

# प्राचीन भारत में आश्रम व्यवस्था (द्वितीय शताब्दी ई०पू० से तृतीय शताब्दी ई० तक)



अजिता ओझा

शोध छात्रा

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सूत्रकाल से ही चली आ रही व्यवस्था जिसका मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से व्यक्ति का जीवन नियंत्रित कर सामूहिक रूप से सामाजिक संगठन को वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत बनाये रखना था, आलोच्यकाल में भी प्रवहमान थी। इसकी महत्ता बताते हुए महाभारत के शान्ति पर्व में इसे ब्रह्मा द्वारा लोकहित में धर्म की रक्षा हेतु उत्पन्न बताया गया है।<sup>1</sup> मनुस्मृति में भी चार आश्रमों का स्पष्ट उल्लेख है— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इन्हें ही जीवन में सफलता की चार सीढ़ियाँ माना गया है जिन पर चलकर ही द्विज अपने जीवन को सफल बना सकता था।<sup>2</sup>

## ब्रह्मचर्य आश्रम

उपनयन संस्कार के साथ ही बालक का ब्रह्मचर्य जीवन में प्रवेश मान लिया जाता था<sup>3</sup> और वह उन सभी कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का अधिकारी बन जाता था जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रों में किया गया था। यह काल भावी जीवन हेतु तैयारी का काल था, अनुशासनकाल था, अध्ययनकाल था। इसमें मनुष्य अपनी सारी शक्ति का संचय करते हुए संसार के आमोद-प्रमोद से विमुख होकर श्रम और साधना से जवीन व्यतीत करता था। इसमें मिली सफलता के आधार पर ही महाभारत के शान्ति पर्व में ब्रह्मचारी के तीन प्रकार बताये गये हैं— उत्तम, मध्यम तथा हीन।<sup>4</sup> महाभारत से लेकर मनु तथा याज्ञवल्क्य तक सभी ने ब्रह्मचारी के आचरण व व्यवहार का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया है। मनु ने ब्रह्मचारियों के पोशाक, भिक्षाटन के कर्तव्य, भिक्षा सामग्री गुरु को देने के बाद शेष भोजन में से स्वयं कम भोजन करने आदि का विवेचन किया है। पोशाक में ब्राह्मण के लिए सन का वस्त्र, क्षत्रिय के लिए रेशम का और वैश्य के लिए ऊन का वस्त्र पहनने की अनुमति दी गई है। इससे स्पष्ट है कि जितना ही उच्चवर्ण का बालक होता था उतना ही मोटा या खुरदरा कपड़ा उसे पहनना पड़ता था। विद्यार्थी यज्ञोपवीत और दण्ड भी धारण करता था।<sup>5</sup> ब्रह्मचारी न तो शरीर पर किसी प्रकार के तेल की मालिश करता था, न आँखों में सुरमा लगाता, न इत्र लगाता, न छतरी और जूता धारण करता, न संगीत, वाद्य, नृत्य, जुआ और गपशप में भाग लेता।<sup>6</sup> उसे सत्यभाषी, नम्र और संयमी होना एवं काम, क्रोध और लोभ से मुक्त रहना पड़ता था।<sup>7</sup> उसे गुरु से बाद में शयन करना और गुरु से (पहले सूर्योदय से पूर्व) उठना पड़ता था।<sup>8</sup> याज्ञवल्क्य ने विद्यार्थी को यह निर्देश दिया है कि वह अध्ययन के प्रति दत्तचित रहे, गुरु की सेवा करे, जो कुछ भी प्राप्त हो उसे गुरु को अर्पित करे तथा मनसा, वाचा

और कर्मणा गुरु के लिए अनुकूल कार्यों को करे।<sup>9</sup> अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात गुरु द्वारा समावर्तन संस्कार<sup>10</sup> (घर वापस आने का संस्कार) सम्पादित करके, गुरु से अनुमति लेकर, ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त करके, गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए घर लौट आता था। ऐसा विद्यार्थी जो आजीवन गुरु के पास रहकर अध्ययन करता था, नैष्ठिक<sup>11</sup> ब्रह्मचारी कहलाता था।

### गृहस्थ आश्रम

गृहस्थ आश्रम को समस्त आश्रमों का मूल बताते हुए मनु का कथन है कि जिस प्रकार वायु का आश्रय लेकर सब प्राणी जीवित रहते हैं उसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थ आश्रम पर निर्भर हैं क्योंकि तीनों आश्रमवासियों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम) का पोषण इन्हीं के द्वारा होता है। इसी कारण गृहस्थ आश्रम सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है।<sup>12</sup> महाभारत के शांति पर्व में भी गृहस्थाश्रम का गुरुत्व तीनों आश्रमों के सम्मिलित गुरुत्व के बराबर कहा गया है।<sup>13</sup> महिलाओं और शूद्रों के लिए केवल गृहस्थ आश्रम का ही प्रावधान किया गया था। गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुए ही ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण से मुक्ति के लिए वह क्रमशः स्वाध्याय, यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान और सन्तानोत्पत्ति करता था।<sup>14</sup> इस प्रकार मनुष्य जीवन के व्यक्तिगत और सामाजिक सभी उत्तरदायित्वों की पूर्ति इसी आश्रम में रहकर कर सकता था।

### वानप्रस्थ आश्रम

जब मनुष्य के सिर के बाल सफेद हो जाते थे और शरीर पर झुर्रियाँ पड़ने लगती थीं तब वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम के सामाजिक और पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्ति पाकर आयु के तीसरे भाग में वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। मनु ने केवल द्विजों को ही वानप्रस्थ में प्रवेश की आज्ञा दी है।<sup>15</sup> वानप्रस्थ में मनुष्य पत्नी के साथ अथवा उसके बगैर<sup>16</sup> अपने परिवार, घर और गाँव को छोड़कर वन में जाकर रहता था। उसका प्रमुख उद्देश्य इन्द्रियों को वश में करना था।<sup>17</sup> वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने पर मनुष्य शनैः शनैः सांसारिक बंधन से दूर रहने का अभ्यास करते हुए तपोमय जीवन व्यतीत करता था।<sup>18</sup> मनु का मत है कि यदि किसी व्यक्ति की वानप्रस्थ आश्रम के कर्तव्यों को करते हुए मृत्यु हो जाय तो वह ब्रह्मलोक (मोक्ष) को प्राप्त करता है।<sup>19</sup>

### संन्यास आश्रम

जीवन के चौथे व अन्तिम भाग में वानप्रस्थाश्रम के बाद व्यक्ति संन्यासाश्रम में प्रवेश करता था<sup>20</sup> अर्थात् वह सांसारिक जीवन का पूर्ण रूप से त्याग करता था।<sup>21</sup> आलोच्यकाल में संन्यासी के लिए व्यवहृत अन्य शब्द हैं परिव्राजक<sup>22</sup>, भिक्षु<sup>23</sup>। मनु ने संन्यासी के साथ 'त्रिदण्ड' शब्द का प्रयोग किया है। त्रिदण्ड का तात्पर्य मनोदण्ड, वाकदण्ड और कायदण्ड से है।<sup>24</sup> निःसंदेह ऐसा कहकर मनु ने इस बात की ओर संकेत किया है कि संन्यासी मनसा (असंग्रही, लोक कल्याण की भावना से आत्म चिन्तन करके), वाचा (कठोर वचनों को भी धर्म पूर्वक सुनकर), कायया (बाल, दाढ़ी, नाखून बढ़ाकर) पूर्णसंन्यासी हो जाता था। जो संन्यासी काम, क्रोध को रोककर इस त्रिदण्ड का व्यवहार करता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य के दण्ड का तात्पर्य संभवतः इसी त्रिदण्ड से है।<sup>25</sup> महाभारत के अनुशासन पर्व में उनके इन्हीं आचरणों के आधार पर चार प्रकार के संन्यासी बताये गये हैं<sup>26</sup> :-

- (1) **कुटीचक**—कदाचित्, अनुभवी एवं आत्मज्ञानी ऋषियों के संरक्षण में रहकर ये यौगिक और तापसिक क्रियाओं का अभ्यास करते थे। संन्यासियों में इन्हें निम्नतम स्थान दिया गया था।

- (2) **वृहदक**—ये प्रत्येक व्यक्ति से भिक्षा न ग्रहण करके भिक्षा प्राप्ति के लिए ब्रह्मर्षि अथवा साधु व्यक्ति के द्वार पर जाते थे।
- (3) **हंस**—यह सर्वोच्च परमहंस से निम्न परन्तु अन्य दो कोटियों वृहदक एवं कुटीचक से उच्चतर होते थे। ये भिक्षाटन के लिए ग्राम अथवा नगरों में प्रवेश करते थे। परन्तु ग्राम में एक और नगर में पाँच रात्रि से अधिक नहीं रह सकते थे।
- (4) **परमहंस**—इन्हें सर्वोच्च संन्यासी माना जाता था। यह भिक्षा ग्रहण करते समय धर्म—अधर्म, सत्य—असत्य, शुद्धि—अशुद्धि, ऊँच—नीच की भावना आदि द्वन्दों से मुक्त रहते थे। वे निर्मल, समदर्शी तथा सर्वात्मा होते थे। आचार—विचार से बाह्यतः पागल प्रतीत होते थे, परन्तु यथार्थ में ऐसा न था।

### आश्रमों का क्रम

महाभारत और मनुस्मृति दोनों में ही आश्रम समुच्चय, अर्थात् सबसे पहले ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ, उसके बाद वानप्रस्थ और अन्त में संन्याश्रम इस क्रम से आश्रम—धर्म के पालन का विधान किया गया है।<sup>27</sup> यद्यपि याज्ञवल्क्य ने जरूर इन दोनों से अलग मत व्यक्त करते हुए विकल्प प्रदान किए हैं जिसके अनुसार व्यक्ति (द्विज) सीधे दूसरे (गृहस्थ) या तीसरे (वानप्रस्थ) आश्रम या केवल तीसरे आश्रम में जा सकता था।<sup>28</sup>

संदर्भ एवं टिप्पणी :

1. पूर्वमेव भगवता ब्राह्मण। लोकहितमनुष्ठिता धर्मसंरक्षणार्थं आश्रमाश्चत्वारोऽभिनिर्दिष्टाः। — महा., 12.191.8
2. चतुष्पदी हि निः श्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता।  
एतामारुह्य निः श्रेणी ब्रह्मलोके महीयते।। — महा., 12.242.15
3. मनु., 2.173
4. महा., 12.214.10
5. मनु., 2.41.47
6. वही., 2.178 — 179; याज्ञ., 1.32
7. वही., 2.177—79; याज्ञ. 1.32
8. आयुषस्तु चतुर्भागं ब्रह्मचर्यनसूयकः।  
गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद्धर्मार्थकोविदः।। — महा. 12.242.16—17
9. गुरुं चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः।।  
आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्।  
हितं तस्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।। —याज्ञ., 1.26 — 27
10. याज्ञ., 1.52
11. आत्मानं निष्ठा उत्क्रान्तिकालं नयतीति नैष्ठिकः। — याज्ञ., 1.49 — 50; महाभाष्य एवं काशिका, 4.3.4.6
12. मनु., 3.78
13. महा., 12.12.12
14. मनु., 6.36—37
15. मनु., 6.1
16. महा., 12.61.3—4

17. मनु., 6.4; याज्ञ., 3.45
18. मनु., 6.14–26; याज्ञ., 3.46–51
19. मनु., 6.12
20. चतुर्थे चायुषः शेषे वानप्रस्थाश्रमं त्यजेत् । – महा., 12.244.23
21. वनेयु च विहच्यैषं तृतीयं भागमायुषः ।  
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ – मनु., 6.33
22. महाभाष्य, 2.1.1, पृ. 243; मनु., 8.40
23. महाभाष्य, 4.3.110
24. मनु., 12, 10–11
25. सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।  
एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥ – याज्ञ., 3.58
26. चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ ।  
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥ – महा., अनुशासन पर्व, 141.89
27. मनु., 6.34
28. याज्ञ., 3.56